IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'डार से बिछुड़ी': नारी मन की अस्थिरता और अस्मिता

शैलेश यादव

शोधार्थी- पीएच0 डी0 (हिंदी)

मणिपुर विश्वविद्यालय, मणिपुर

कृष्णा सोबती की असली पहचान नारी अस्मिता से संबंधित सवालो को निडर तरीके से सामने रखने में है, जहाँ स्त्री समाज के सड़े गले, रूढ़िवादी एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देती हैं। उन्होंने अपने लेखन द्वारा स्त्री की प्रचलित छवि को तोड़कर एक नई दृष्टि से स्त्री को पुर्नस्थापित करने का प्रयास किया है। कृष्णा सोबती कम लिखने को अपना साहित्यिक परिचय मानती हैं और यही उनके परिचय की विशिष्टता भी है। इसी विशिष्टता की पहचान के रूप में इनके अन्य उपन्यासों में एक नाम 'डार से बिछुड़ी' भी है, जिसमें इन्होंने स्त्री जीवन की आकांक्षाओं एवं कोमल-करुण भावनाओं और उनके नष्ट हो जाने पर हृदय में उठते खीझ और हाहाकार का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। इस उपन्यास में कृष्णा सोबती ने लेखकीय दायित्व से अपनी रचना धर्मिता और व्यक्तित्व के अंतरमन को जगाने तथा उसमें छिपे सत्य को बाहर निकालने का काम किया है।

इस उपन्यास में स्त्री पात्र 'पाशो' के जीवन की अस्थिरता में पली गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया है।

'डार से बिछुड़ी' उपन्यास सात भागों में विभक्त है। लेखिका ने इस उपन्यास की शुरुआत एक ऐसी लड़की के मनोंभावों के उधेड़बुन से की है, जिसकी माँ अपनी बेटी, माँ और भाई को छोड़कर दूसरे के यहाँ चली जाती है। जिसकी निर्मम सजा बेटी 'पाशो' को भुगतना पड़ रहा है। उसी के कारण एक बेटी को स्त्री और जवान होने के तमाम प्रकार के दंश को झेलना पड़ रहा है। हर स्त्री एक मुक्त आकाश की कामना करती है लेकिन उसे एक प्रकार से घर में कैद कर रखा है क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा स्त्री का हर प्रकार से शोषण किया जाता है जिसमें स्त्री को अनुकूलित करके शोषण के ढ़ाँचे में ढ़ालकर शोषित होने के लिए तैयार किया जाता है। सिमोन द बुआ स्पष्ट कहती हैं कि- "औरत को औरत होना सिखाया जाता है और बनी रहने के लिए अनुकूल किया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण से समझ में आएगा कि प्रत्येक मादा मानव जीव अनिवार्यता एक औरत नहीं है, यदि वह औरत होना चाहती है तो उसे तपने की रहस्यमय वास्तविकता से परिचित होना पड़ेगा।"[1] कृष्णा सोबती भी यही मानती हैं कि स्त्री की दीन-हीन अवस्था का जिम्मेवार पितृसत्तात्मक ढ़ाँचे के नियम कानून कायदे एवं सोच रही है। एक स्त्री सभी सामाजिक बंधनों को त्याग कर प्रेम करती है और उसी प्रेम स्वीकार कर अपने मुस्लिम प्रेमी के यहाँ चली जाती है परंपरागत समाज इसे स्वीकार नहीं कर सकता। एक विवाहिता और फिर 'प्रेम' विवाहिता स्त्री को प्रेम का अधिकार कहाँ है? फिर तो दोषारोपण स्वभाविक था। लोग पाशो को कहते है कि जब इसकी माँ चली गई तो यह भी उसी की भाँति जा सकती है। नानी भी इसी बारे

में स्त्री हृदय को विदीर्ण कर देने वाला वाक्य कहतीं हैं- "अरी कुएँ में डूब मरी थी तेरा बीज डालने वाली ! अब तु सँभलकर साँस भर ..."[2]

एक युवा स्त्री के मन में क्या-क्या कल्पनाएँ जागृत होती है इसका रेखांकन कृष्णा सोबती ने बखूबी किया है। उन्होंने पाशो की जवानी का वर्णन अपने इस वाक्य से किया है- "भरे उठान अकड़कर आँखो से रंगीन डोरे बिखेरते राह पर से चली जाती ! ठहरने को न कपड़ा ठहरता, न नजर और बाँहें किन्ही प्यासे गलबहियों सी हर अँगड़ाई से संग उठती, खिलती और अपने में सिमट जाती।"[3] पाशो के मन में उठती आकांक्षाओ का अंकन तथा एक प्यासा सा भविष्य उसके आँखो के सामने घूम जाता है। यहाँ तो सोबती जी ने पाशो के मन के उछाह और उल्लास का ही रूप दिया है लेकिन इसके बाद के उपन्यास 'मित्रों मरजानी' (1966) में मित्रों सशक्त नजर आती हैं मित्रो देह की माँग को अभिव्यक्ति करने में संकोच नहीं करती, परिवार, समाज की परवाह नहीं करती, अपनी बात सबके सामाने निःसंकोच कहती है। कि जब, पुरुष की इच्छा होती है उसके लिए सब अच्छा है लेकिन स्त्री के लिए यौन इच्छा जाहिर करना कुलटा या वेश्या कहा जाता है। इस द्वंद्व को तोड़ती हुई मित्रो नजर आती है- "तुम्हीं बताओ जेठानी, तुम जैसा सत बल कहाँ से लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। बहुत हुआ हफ्ते पखवारे... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है इतनी प्यास की मछली की तरह तड़पती हूँ।"[4] अपनी इच्छा को व्यक्त न कर पाशो भी सोचती है कि- "खोजो के घर पटरानी बनकर जाने वाली नानी की बेटी कैसी लगती होगी? बार-बार सोचती और सोच-सोचकर और इठलाती।"[5] लेकिन मामू लोगों की याद (डर के कारण) से ही पाँव ठिठक जाते। किसी तरह बाहाना बनाकर, अपनी माँ को देखने की लालसा लिए हुए वह शाहआलमी तक निकल जाती और वापस लौट आती। वह तो अभी

अनजान है लेकिन उसे अभी वह भान नहीं है कि जब एक बार पाँव थिरका तो वह फिर वापस नहीं आता है। वह अपने सपनों की दुनिया में खो जाती है। वह कुएँ पर नहाती है तो नहाती ही रहती और पानी भरती है तो वहाँ बैठकर सोच में ही डूब जाती।

लेखिका ने एक स्त्री की विवशता को भी प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। स्त्री को सत्ता से मोह नहीं है वह तो केवल अपने अस्तित्व की पहचान चाहती है, एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह जीना चाहती है। महादेवी वर्मा का कहना पूर्णतया सत्य है कि "हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय"[6] जितनी भी व्यवस्थाएं समाज में हैं, वह सब पुरुषों ने अपनी सुविधा के लिए बनाया है। यह समाज स्त्री को उतने ही अधिकार प्रदान करता है जिससे उसकी अधीन स्थिति बनी रहे। पितृसत्तात्मक संस्कृति के अनुसार विवेक हीन, सहनशील स्त्री ही आदर्श स्त्री है क्योंकि इससे वह शोषण की राजनीति समझ नही पाएगी। इसलिए पितृक समाज स्त्री को बचपन से ही विवेकहीन, सहनशील, और लाजवन्ती बनाने के लिए ही प्रयासरत रहता है। तसलीमा नसरीन ने स्त्री की स्थिति के बारे में लिखा है- "जन्म के बाद से ही स्त्री-पुरुष निर्मित विभिन्न नियमों और नीतियों के प्रहार को झेलते हुए जिंदा रहती है। स्त्री लहुलुहान है। वह जिस रास्ते से होकर चलती है उस पर काँटे बिछे हुए हैं।"[7] स्त्री के युवती होने पर पाबंदी का सिकंजा और भी जकड़ उठता है। यही कारण है कि जवान लड़की होने के कारण पाशो को अपने ही घर में बहुत सी यातनायें सहनी पड़ती है। उसकी मामी, मामू तथा नानी हमेशा उसके पीछे ही लगे रहते हैं। यहाँ तक कि मामी लोग उसे पीढ़ी पर बैठने के लायक नहीं समझती हैं। उसे केवल छोटे-छोटे काम जैसे- बर्तन वैगरह धोने को देती है। उपन्यास से उदाहरण द्रष्टव्य है- "तन्दूर लगाने को क्या यही चुड़ैल रह गयी है इसे

बर्तन-भाड़े दिया करो मलने को...''[8] क्योंकि उसकी माँ ने कदम घर से बाहर निकाल लिया इसलिए माँ के कारण, माँ का धिक्कार उसको ही सुनना पड़ता है। उसे घर में इतना सताया जाता है कि उसे दिन रात भूखा रहना पड़ता है इसलिए पाशो को भागने पर मजबूर होना पड़ता है। उसकी गलती केवल इतना ही शाह आलमी से आते जाते हाट पर रहने वाले करीम को देखकर मात्र मुस्करा भर देती है। यही उसका अपराध हो जाता है। उसे अगले दिन प्रभाती जोड़-मेले में किसी को सौंप देने का फैसला कर लिया जाता है। पाशो को उसी रात ''दिल में धौंस पड़ी। प्रभाती जोड़े मेले के बहाने मेरी मौत आई है।...''[9] उसी रात पाशो घर से निकल जाती है। यहीं पर सोबती की स्त्री पात्र और भी अन्याय सहन करने से इनकार कर देती है तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था को भी किनारे कर बूढ़े पति या सौदागर के हाथ में बँधने से भी अलग कर, निकलकर अपनी माँ के पास (खोजों की हवेली) चली जाती है। समाजिक परंपरा और रूढ़िवादिता को तोड़ने की हिम्मत दिखाती है। इसके एवज में उसे समाज के लांछन को सहना पड़ता है। इस बारे में तसलीमा नसरीन जी कहती हैं ''जो औरत पुरूष के बनाए हुए धर्म और कानून के पिंजड़े में स्वयं को बंदी रखती है या अपने को विसर्जित करती है उसे सभी अच्छी कहतें हैं। सभी उसकी प्रशंसा करतें हैं। यह भी पुरुष तंत्र का कौशल है कि जो स्त्री पिंजड़ा तोड़कर बाहर आती है, उसे अश्लीलता का दोषी ठहराया जाता है। उसे सामाजिक बहिष्कार का शिकार होना पड़ता है, मानों किसी भी स्त्री के लिए पारिवारिक पिंजड़ा ही उसका परम आराध्य है।''[10]

पाशो के द्वारा स्त्री मन को सोचने के लिए मुक्त रखती है और उसे लेखिका बड़े ही प्रभावशाली तरीके से सपनों के माध्यम से व्यक्त करती है- ''नींद में देखा लाल जोड़ा पहने डोले मे बैठने लगी हूँ और ओढ़नी के संग लटकता गठबंधन का

वही पीली चमकी रूमाल है। लाल जोड़ा... लाल जोड़ा... इन बाहों में छनकर करता हाथी दाँत का लाल चूड़ा... लाल..."[11] अपने कौशलता से बहुत गहनता से यह भी सवाल उठाया गया कि स्त्री हमेशा से पुरुष की अनुगामनी रही। उसी पर सारी आशाएँ और सपने आकर टिकते हैं। पाशो जब तक दिवान लखपत के यहाँ जाती है तो वहाँ बहुत ही सुख पूर्वक रहती है लेकिन जैसे ही उनकी मृत्यु होती है तो उसका देवर बरकत पाशो के साथ बालात्कार करता फिर अपने आदमियों द्वारा दूसरे पुरुष के पास पहुँचा देता है, ऋण चुकता करने के लिए। इस तरह पाशो पहले अपने पति (दिवान लखपत) की मृत्युपरांत अपने ही घर में बलात्कृता होती है। उसे अपने दुधमुँहे बच्चे से भी बिछड़ना पड़ता है। एक सम्मानित पत्नी और माँ की तड़प उसके सीने में ही दम तोड़ देती है । वह चीख भी नहीं पायी। राज किशोर जी लिखते हैं कि "आज भी समाज के परंपरागत हिस्सों में कितने बलात्कार दबे छिपे हैं होते है, या जारी रहते हैं, लेकिन चीखें कम सुनाई पड़ती हैं, क्योंकि हर चीख स्त्री की संपूर्ण तबाही का कारण बन सकती है।"[12] पूरे उपन्यास में स्त्री का स्थान एक वस्तु के समान है। राजेन्द्र यादव कहतें है, "औरत पुरुष के लिए सुमुखी, पयोधरा, क्षीण कटि, बिल्वस्तनी, सुभगा, भगवती है।"[13] क्या स्त्री सच में एक वस्तु समझी जानी चाहिए? यह आज का गहनतम प्रश्न है। तब उसे अपनी नानी की बताई हुई पंक्ति याद आती है- "नानी झूठ नहीं कहती थी- 'संभल कर री, एक बार का थ्रिका पाँव जिन्दगानी धूल में मिला देगा।' "[14] इसतरह डार से बिछुड़ने पर डार से आकर मिलने तक एक घर से दूसरे घर और दुसरे से तीसरे घर लेकिन कहीं रुक नहीं पाती है जब डार से आकर पुनः मिलन हो पता है तो उसका सब कुछ लुट चुका था। मान-सम्मान, सुख, सुहाग यहाँ तक अपने कोख से जन्मा बच्चा भी। एक स्त्री की इतनी दयनीय स्थिति प्रेमचंद भी नहीं दिखा पातें हैं। समकालीन महिला लेखिकाओं ने

स्त्री शोषण का सवाल खड़ा किया है। वह डार से मिलने के बावजूद इतना विषाद में है कि अपनों से मिलने के सुख से सुखी नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में पहुँच जाती है कि वहाँ न हास्य, न रूदन और न ही अपने जीवन की क्रूर परिस्थितियों से शिकायत, वहाँ तो प्रशान्ति दिवा-रात्री का होना है।

इस उपन्यास में उस जमाने में होने वाले अत्याचार, युद्ध, उच्चवर्ग की स्थिति का भी वर्णन किया गया है। कैसे कोई पुरुष किसी स्त्री को ले आता है, अपनी आवश्कता के अनुसार उपभोग करता है और फिर दूसरों के यहाँ भेज दिया जाता है। पुरुषों के लिए स्त्री जीवन का अर्थ है केवल सेक्स। उसकी निजी जीवन की चाहत, पसंद, न पसंद का कोई मायने नहीं होता है। "...स्त्री के लिए विवाह से बाहर का संबंध अनैतिक, पाप और अपराध माना जाता है जबकि पुरुष को एक प्रकार से अनैतिक संबंधो के प्रति वैधानिक छूट है। वैश्या, रखैल, कालगर्ल सब उसके आनंद की संस्थाएं हैं।"[15] ऐसा 'संस्कार' उपन्यास में चन्द्र और नरणप्पा में है। 'डार से बिछुड़ी' उपन्यास में स्थिति यहाँ तक गिर जाती है कि उसे एक बूढ़े की रखैल बनकर रहना पड़ता है। जो कुछ भी मान सम्मान उसका बचा होता है वह भी फिरंगी के हमलों में मझले (जिसके साथ फिर से जीवन बिताने का निर्णय कर लिया था) और मलिक राज के साथ आखिरी आस भी टूट जाती है।

संपूर्ण उपन्यास में समस्या की जटिलता, भाषा की सरलता, प्रवाहमय से सहज बोधगम्य हो जाती है इसमें कहीं ऊब या दूरूहता नहीं मालूम पड़ती है। छोटे-छोटे संवाद और कुछ अंचल विशेष के शब्दो का प्रयोग भी है। जैसे लुकमा, तत्ता, साग का तंबिया, पैरी पौना, लीड़े तथा ढक्की आदि। इस उपन्यास में मानव व्यवहार या आम जीवन के प्रयोग में बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया है। जैसे मझले से पाशो की बात, वह सोचती है कि इसी के साथ फिर से दुनिया बसाई जाय।

मझला कहता है- "नवेली, मेरे रहते तुम्हें डर काहे का? नजर झुका अपनी तकदीर को कोसती रही अब डरने और न डरने से क्या!"[16] यहाँ लेखिका मझले के माध्यम से नायिका पाशो को जीवन संघर्ष के जूझने की प्रेरण देती है। प्रेमचंद का होरी तो हारता है, धनिया जूझती है हारती नहीं। स्थितियां अलग-अलग हैं, और हो भी सकती हैं किंतु संघर्ष की जीजिविषा की वह परंपरा जिसका बीज प्रेमचंद की धनिया में रोपा गया था उसका सफल निर्वहण कृष्णा सोबती की पाशो में बखूबी दिखता है।

वस्तुतः हमें कृष्णा सोबती के लेखन में हमेशा विविधता के दर्शन होते हैं, 'डार से बिछुड़ी' उपन्यास में स्त्री की नियति को दिखाती हैं। राकेश कुमार का कहना सत्य ही है कि "कृष्णा सोबती के उपन्यासों में औरत कतरा-कतरा, जिन्दगी मिसती अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती है आज तक स्त्री के साथ समाज ने मानवीय ढंग का व्यवहार नहीं किया और न ही उसे पूर्ण मनुष्य के रूप में स्वीकृति दी है इसलिए उसके साथ अमानवीय व्यवहार होता रहा है। स्त्री के प्रति इसी तरह के हिंसक, अमानवीय , बर्बरतापूर्ण व्यवहार को कृष्णा सोबती ने अपनी लेखनी में दिखाया है।"[17] इस उपन्यास में नारी मन का खुले रूप से वर्णन करने का प्रयास किया गया है। वह चाहे नानी की सीख हो या मामी की कही बातें, सबको सहते हुए पाशो अपना पैर उस घर से उठाने को मजबूर होकर शेख-दिवान आदि के यहाँ से होते हुए वह फिर जिस डार से बिछुड़ी थी उस पुरानी डार से आन मिलती है। वह ऐसी स्थिति में है कि दुःख, शोक, हँसी आदि का सुख भी उसे सुख न दे सकता है क्योंकि वह सब कुछ खो चुकी है, दिन केवल दिन-रात बीत रहे हैं।

[1] स्त्री उपेक्षिता, सीमोन द बोउवार, पृष्ठ सं. 23

[2] डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना 6, सं. 1972, पृष्ठ सं.- 11

[3] डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना 6, सं. 1972, पृष्ठ सं.- 10

[4] मित्रो मरजानी, कृष्णा सोबती, पृष्ठ सं. 20

[5] डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना 6, सं. 1972, पृष्ठ सं.- 10

[6] श्रृखला की कड़ियाँ, मादेवी वर्मा, पृष्ठ सं. 27-28

[7] नष्ट लड़की नष्ट गद्य, तसलीमा नसरीन पृष्ठ सं. 76

[8] डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना 6, सं. 1972, पृष्ठ सं.- 12

[9] डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना 6, सं. 1972, पृष्ठ सं.- 24

[10] नष्ट लड़की नष्ट गद्य, तसलीमा नसरीन पृष्ठ सं. 116

[11] डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना 6, सं. 1972, पृष्ठ सं.- 21-22

[12] स्त्री के लिए जगह, राजकिशोर, पृष्ठ सं. 121

[13] आदमी के निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ सं. 05

[14] डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना 6, सं. 1972, पृष्ठ सं.- 101

[15] समकालीन मलि उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी विमर्श, डॉ. मुक्ता त्यागी पृष्ठ सं.- 19

[16] डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना 6, सं. 1972, पृष्ठ सं.- 104

[17] नारीवादी विमर्श, राकेश कुमार, पृष्ठ सं. 208